

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन और सामाजिक यथार्थ

जितेन्द्र कुमार सिंह

हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, मध्य प्रदेश, भारत

सार

भारत की आत्मा गाँवों में बसती है, यह कथन केवल भावुक उद्गार नहीं बल्कि एक सामाजिक-ऐतिहासिक तथ्य रहा है, और हिंदी कथा साहित्य ने इस तथ्य को अपनी विषय-वस्तु का आधार बनाया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन के चित्रण और उसमें अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ का अध्ययन किया गया है। अध्ययन प्रेमचंद के किसान-जीवन संबंधी लेखन से आरंभ होकर रेणु, नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, राही मासूम रज़ा और श्रीलाल शुक्ल की रचनाओं तक पहुँचता है और दलित, स्त्री तथा समकालीन कृषि-संकट से जुड़े कथा-लेखन तक विस्तृत होता है। शोध-पत्र में भू-स्वामित्व, ऋण, जाति-व्यवस्था, पंचायत की राजनीति, शिक्षा और विकास-योजनाओं की विफलता जैसे प्रश्नों के साहित्यिक चित्रण का विश्लेषण किया गया है तथा आंचलिकता और यथार्थवाद के संबंध पर विचार किया गया है। अध्ययन द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। निष्कर्ष यह है कि हिंदी कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन आदर्श और करुणा के चित्रण से आगे बढ़कर आलोचनात्मक, बहुस्तरीय और व्यंग्यपूर्ण यथार्थ तक पहुँचा है। इससे भारतीय ग्रामीण समाज की संरचनात्मक असमानताएँ और परिवर्तन की प्रक्रिया साहित्यिक दस्तावेज़ के रूप में दर्ज हुई हैं।

शब्द: ग्रामीण जीवन; सामाजिक यथार्थ; हिंदी कथा साहित्य; प्रेमचंद; आंचलिक उपन्यास; किसान; दलित जीवन

प्रस्तावना

भारतीय समाज की बुनियाद लंबे समय तक गाँव और कृषि पर टिकी रही है। भूमि का स्वामित्व, जाति का पदानुक्रम, ऋण का तंत्र और पंचायत जैसी संस्थाएँ ग्रामीण जीवन की संरचना निर्धारित करती रही हैं। समाजशास्त्रियों ने गाँव को भारतीय समाज की मूल इकाई के रूप में विश्लेषित किया है। एस. सी. दुबे ने भारतीय गाँव के अध्ययन में परिवार, जाति, अर्थव्यवस्था और सत्ता-संबंधों के परस्पर गुँथे हुए ताने-बाने को उजागर किया (दुबे, 9)। एम. एन. श्रीनिवास ने रामपुरा गाँव के अपने अध्ययन में यह स्पष्ट किया कि गाँव कोई स्थिर और एकरस

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

इकाई नहीं बल्कि विरोधी हितों और संबंधों का क्षेत्र है (श्रीनिवास, 3)। साहित्य इन्हीं सामाजिक यथार्थों को संवेदना और कथा-शिल्प के माध्यम से अभिव्यक्त करता है।

गांधी ने हिंद स्वराज में आधुनिक सभ्यता की आलोचना करते हुए ग्राम-जीवन और स्वावलंबन को भारतीय समाज के नैतिक आधार के रूप में देखा (गांधी, 35)। इस दृष्टि ने स्वतंत्रता-आंदोलन के दौर में हिंदी कथाकारों को ग्रामीण यथार्थ के प्रति सजग किया। प्रेमचंद ने 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन में साहित्य को राजनीति के पीछे चलने वाली नहीं, बल्कि उसके आगे मशाल दिखाने वाली सच्चाई कहा और साहित्यकार के सामाजिक दायित्व को रेखांकित किया (प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, 18)। यही दृष्टि हिंदी कथा साहित्य में ग्रामीण यथार्थ के चित्रण की प्रेरक बनी। स्वतंत्रता के बाद ज़मींदारी उन्मूलन, भूमि-सुधार, पंचवर्षीय योजनाओं, पंचायती राज और बाद में हरित क्रांति ने गाँव की संरचना में परिवर्तन किए, पर साथ ही नई विषमताएँ भी पैदा कीं। 1990 के दशक के बाद कृषि-संकट, ऋणग्रस्तता और पलायन ने ग्रामीण जीवन के सामने नए प्रश्न खड़े किए। हिंदी कथा साहित्य ने इन सभी परिवर्तनों को दर्ज किया है। इसलिए यह अध्ययन प्रासंगिक है कि कथा साहित्य के माध्यम से ग्रामीण यथार्थ के विभिन्न चरणों और उसकी बदलती दृष्टियों को समझा जाए।

साहित्य समीक्षा

हिंदी उपन्यास और कहानी की आलोचना में ग्रामीण यथार्थ पर पर्याप्त विचार हुआ है। रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद और उनका युग में प्रेमचंद के साहित्य को किसान-जीवन और राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में विश्लेषित किया और उन्हें किसान चेतना का महान कथाकार माना (रामविलास शर्मा, 88)। गोपाल राय ने हिंदी उपन्यास का इतिहास में प्रेमचंद-परंपरा, आंचलिक उपन्यासों और स्वातंत्र्योत्तर धाराओं का क्रमबद्ध विवेचन किया (गोपाल राय, 150)। मधुरेश ने हिंदी उपन्यास का सफ़रनामा में उपन्यास की यात्रा में ग्रामीण यथार्थ की विभिन्न प्रवृत्तियों को रेखांकित किया (मधुरेश, 120)। रामदरश मिश्र ने हिंदी उपन्यास: एक अंतर्यात्रा में उपन्यास-विधा के भीतर लोकजीवन और गाँव के प्रश्नों को देखा (रामदरश मिश्र, 75)। नामवर सिंह ने कहानी: नयी कहानी में स्वातंत्र्योत्तर कथा-परिवर्तन का विवेचन करते हुए गाँव और शहर के अनुभव-भेद पर भी विचार किया (नामवर सिंह, 60)। समाजशास्त्रीय अध्ययन साहित्यिक पाठ की पृष्ठभूमि को समझने में सहायक हैं। दुबे का अध्ययन गाँव के सामाजिक ढाँचे का विवरण देता है (दुबे, 9), तथा श्रीनिवास का अध्ययन प्रभुत्वशाली जाति जैसी अवधारणाओं के माध्यम से ग्रामीण सत्ता-संबंधों की व्याख्या करता है (श्रीनिवास, 3)। इन अध्ययनों से साहित्यिक चित्रण की

National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and Multidisciplinary Research (NCETAHMR)

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

प्रामाणिकता को परखने का आधार मिलता है। फिर भी इन दोनों अनुशासनों के बीच संवाद सीमित रहा है। यह शोध-पत्र साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि को साथ रखकर ग्रामीण यथार्थ के विकास को समझने का प्रयास करता है।

शोध के उद्देश्य

1. आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन के चित्रण की प्रमुख धाराओं की पहचान करना।
2. प्रमुख साहित्यिक कृतियों के माध्यम से भूमि, ऋण, जाति, राजनीति और शिक्षा से जुड़े सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण करना।
3. आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में आंचलिकता और यथार्थवाद के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करना।
4. दलित, स्त्री और समकालीन कृषि-संकट से संबंधित कथा-लेखन के योगदान का मूल्यांकन करना।

शोध पद्धति

यह शोध वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक है तथा पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। प्राथमिक पाठ के रूप में प्रेमचंद, रेणु, नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, शिवप्रसाद सिंह, राही मासूम रज़ा, श्रीलाल शुक्ल, जगदीश चंद्र, कृष्णा सोबती, मैत्रेयी पुष्पा और संजीव की प्रतिनिधि कृतियों का चयन किया गया है। इन्हें कालक्रमिक और विषयगत पद्धति से विश्लेषित किया गया है। आलोचनात्मक विवेचन के लिए साहित्येतिहास ग्रंथों, आलोचना-पुस्तकों और समाजशास्त्रीय अध्ययनों का उपयोग किया गया है। अध्ययन की सीमा यह है कि कृतियों का चयन प्रतिनिधिक है और सभी क्षेत्रीय भाषाओं तथा सभी रचनाकारों का समावेश संभव नहीं हुआ है। साथ ही साहित्य का यथार्थ समाजशास्त्रीय आँकड़ों का विकल्प नहीं बल्कि रचनात्मक पुनर्सृजन है, इसलिए निष्कर्ष व्याख्यात्मक प्रकृति के हैं।

ग्रामीण जीवन और सामाजिक यथार्थ: अवधारणा

यथार्थवाद साहित्य की वह प्रवृत्ति है जो जीवन को उसकी वास्तविक सामाजिक परिस्थितियों में प्रस्तुत करने का प्रयास करती है। ग्रामीण यथार्थ का अर्थ गाँव के जीवन की वे वास्तविकताएँ हैं जो भौतिक परिस्थितियों, सामाजिक संबंधों और सत्ता-संरचनाओं से निर्धारित होती हैं। इनमें कृषि पर निर्भरता, भूमि का असमान वितरण, महाजनी ऋण, जातिगत पदानुक्रम, श्रम का शोषण, परंपरा और अंधविश्वास तथा बाह्य हस्तक्षेपों के रूप में राज्य

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

और बाज़ार की उपस्थिति शामिल है। श्रीनिवास की प्रभुत्वशाली जाति की अवधारणा यह बताती है कि गाँव में संख्या, भूमि और सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर कुछ समुदायों का वर्चस्व रहता है (श्रीनिवास, 3), और हिंदी कथा साहित्य के अनेक सत्ता-पात्र इसी वास्तविकता के रचनात्मक रूप हैं।

ग्रामीण जीवन के चित्रण की तीन प्रमुख दृष्टियाँ पहचानी जा सकती हैं। पहली दृष्टि आदर्शवादी या सुधारवादी है, जिसमें गाँव को नैतिक बल का केंद्र मानकर उसके शोषण के विरुद्ध करुणा और सुधार की भावना जागृत की जाती है। दूसरी दृष्टि आंचलिक है, जिसमें किसी विशेष भू-भाग की भाषा, लोकाचार, रीति-रिवाज और लोकगीतों के माध्यम से स्थानीय जीवन का सघन चित्र रचा जाता है। तीसरी दृष्टि आलोचनात्मक और व्यंग्यपरक है, जिसमें स्वतंत्रता के बाद के मोहभंग और लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकृत रूप को उजागर किया जाता है। गोपाल राय ने उपन्यास की इन धाराओं के ऐतिहासिक विकास को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया है (गोपाल राय, 150)। ये दृष्टियाँ परस्पर विरोधी नहीं बल्कि कालक्रम में विकसित होती चेतना के चरण हैं। ग्रामीण यथार्थ का साहित्यिक चित्रण अपने ऐतिहासिक संदर्भ से अलग करके नहीं समझा जा सकता। औपनिवेशिक काल में ज़मींदारी और रैयतवाड़ी जैसी भू-राजस्व व्यवस्थाओं ने किसान को ऋण और बेदखली के संकट में डाला, और महाजन तथा ज़मींदार का गठजोड़ ग्रामीण शोषण का आधार बना। प्रेमचंद का साहित्य इसी ऐतिहासिक यथार्थ से उपजा है। स्वतंत्रता के बाद ज़मींदारी उन्मूलन के कानून, भूमि-सुधार के प्रयास और पंचायती राज की स्थापना ने गाँव की सत्ता-संरचना को बदलने की कोशिश की। परंतु दुबे और श्रीनिवास जैसे समाजशास्त्रियों के अध्ययन दिखाते हैं कि जाति और भूमि पर आधारित पुरानी असमानताएँ नए रूपों में बनी रहीं (दुबे, 9; श्रीनिवास, 3)।

1960 के दशक में हरित क्रांति ने कुछ क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाया, परंतु साथ ही संपन्न और विपन्न किसानों के बीच खाई को और गहरा किया। इस परिवर्तन का साहित्यिक प्रतिबिंब स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में दिखाई देता है, जहाँ विकास की योजनाएँ उन्हीं वर्गों के हित में काम करती दिखती हैं जिनके पास पहले से सत्ता है। राग दरबारी और अलग अलग वैतरणी जैसी रचनाएँ इसी मोहभंग के चित्र हैं (श्रीलाल शुक्ल, 112; शिवप्रसाद सिंह, 90)। इस प्रकार साहित्य और इतिहास का संबंध यह है कि हर ऐतिहासिक चरण ने ग्रामीण कथा-दृष्टि को नया आयाम दिया, और गोपाल राय की इतिहास-दृष्टि इसी कालक्रमिक विकास को स्पष्ट करती है (गोपाल राय, 150)।

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

ग्रामीण समाज की सत्ता-संरचना को समझे बिना उसके साहित्यिक चित्रण का मूल्यांकन अधूरा रहेगा। गाँव में सत्ता कई स्तरों पर संचालित होती है: भूमि-स्वामित्व से प्राप्त आर्थिक सत्ता, जाति-पदानुक्रम से उपजी सामाजिक प्रतिष्ठा, पंचायत और स्थानीय प्रशासन से जुड़ी राजनीतिक सत्ता, तथा धर्म और परंपरा से प्राप्त नैतिक अधिकार। श्रीनिवास ने दिखाया कि प्रभुत्वशाली जाति इन सभी स्तरों पर प्रायः एक साथ सक्रिय रहती है (श्रीनिवास, 3)। हिंदी कथा साहित्य में यह संरचना बार-बार दिखाई देती है, चाहे वह गोदान की पंचायत हो जो होरी को दंडित करती है, मैला आँचल का जाति-गुटों में बँटा गाँव हो या राग दरबारी की सहकारी समिति और पंचायत की राजनीति। इस दृष्टि से पंचायत जैसी संस्था के साहित्यिक चित्रण में परिवर्तन ध्यान देने योग्य है। प्रेमचंद के यहाँ पंचायत प्रायः परंपरागत नैतिक सत्ता और कभी-कभी जातीय दबाव का प्रतीक है, जबकि स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में वह राजनीतिक जोड़-तोड़ और स्वार्थ का मंच बन जाती है। दुबे के अध्ययन में भी ग्रामीण संस्थाओं का स्वरूप समय के साथ बदलता हुआ दिखता है (दुबे, 9)। इस बदलाव को पहचानना ग्रामीण यथार्थ के साहित्यिक इतिहास को समझने की कुंजी है।

प्रेमचंद और किसान-जीवन का यथार्थ

प्रेमचंद ने हिंदी कथा साहित्य को ग्रामीण यथार्थ का पहला व्यापक और प्रामाणिक चित्र दिया। प्रेमाश्रम में उन्होंने ज़मींदार और किसान के संघर्ष को केंद्र में रखा और उस दौर के किसान पर होने वाले अत्याचार, बेगार और बेदखली की कथा कही (प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, 45)। रामविलास शर्मा के अनुसार प्रेमचंद के लेखन में किसान केवल दया का पात्र नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन का सहभागी बनता है, यद्यपि कुछ रचनाओं में समाधान का आदर्शवादी स्वर भी दिखाई देता है (रामविलास शर्मा, 88)। गोदान प्रेमचंद के ग्रामीण यथार्थ-चित्रण का शिखर है। होरी एक सामान्य किसान है, जिसका सपना एक गाय रखने का है। वह कर्ज, लगान, पंचायत के दंड और जाति की मर्यादा के जाल में फँसता जाता है। यहाँ ज़मींदार राय साहब, महाजन और धार्मिक-सामाजिक पाखंड, तीनों मिलकर किसान के शोषण का तंत्र बनाते हैं, और अंततः होरी की मृत्यु इस तंत्र की निर्ममता का प्रतीक बन जाती है (प्रेमचंद, गोदान, 78)। उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमें शोषण केवल बाहरी शक्ति द्वारा नहीं, बल्कि समाज के भीतर की रूढ़ियों और जातीय मर्यादाओं के माध्यम से भी चलता है। धनिया का चरित्र ग्रामीण स्त्री की प्रतिरोध-क्षमता का उदाहरण है, और गोबर का शहर की ओर पलायन आने वाले दशकों के प्रवासन की पूर्वसूचना देता है (प्रेमचंद, गोदान, 150)। प्रेमचंद की कहानियों में ग्रामीण यथार्थ और भी मार्मिक रूप में सामने

आता है। पूस की रात में हल्कू के पास कंबल खरीदने के पैसे नहीं हैं, और कर्ज चुकाने के बाद वह ठंड में खेत की रखवाली करता है। सद्गति और ठाकुर का कुआँ जैसी कहानियाँ जातिगत भेदभाव की क्रूरता दिखाती हैं, और कफ़न में घीसू-माधव के माध्यम से गरीबी द्वारा मानवीय संवेदनाओं के क्षरण को चित्रित किया गया है (प्रेमचंद, मानसरोवर, 210)। इन रचनाओं ने ग्रामीण समाज की आर्थिक और सामाजिक विषमता को हिंदी साहित्य के केंद्र में स्थापित किया।

स्वतंत्रता-पूर्व अन्य प्रवृत्तियाँ: लोकभाषा और गाँव का चित्र

प्रेमचंद के साथ-साथ अन्य रचनाकारों ने भी ग्रामीण जीवन के विविध पक्षों को देखा। शिवपूजन सहाय की देहाती दुनिया में भोजपुरी अंचल के जीवन, उसकी बोली-बानी और लोक-व्यवहार का सजीव चित्र है, और इसे आंचलिक उपन्यास की आरंभिक कड़ी के रूप में देखा जाता है (शिवपूजन सहाय, 12)। इस रचना में गाँव को केवल करुणा के विषय के रूप में नहीं, बल्कि अपनी भाषा और सांस्कृतिक सघनता के साथ प्रस्तुत किया गया है। मधुरेश के अनुसार इस प्रयोग ने आगे के आंचलिक उपन्यासों के लिए ज़मीन तैयार की (मधुरेश, 120)। इस काल में गांधीवादी ग्राम-आदर्श का प्रभाव भी रचनाओं में दिखाई देता है। गांधी के अनुसार गाँव का स्वावलंबन और सादा जीवन आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के विकल्प के रूप में महत्वपूर्ण था (गांधी, 35)। इसके प्रभाव में ग्रामीण पुनर्निर्माण, ग्राम-सुधार और अछूतोद्धार जैसे विषय कथा-साहित्य में आए। परंतु यह दृष्टि कभी-कभी गाँव के आदर्शीकरण की ओर भी ले जाती थी, जिसके प्रतिकार के रूप में स्वतंत्रता के बाद के लेखकों ने अधिक निर्मम यथार्थ-दृष्टि अपनाई।

आंचलिक उपन्यास: रेणु, नागार्जुन और अन्य

आंचलिक उपन्यास की धारा का सर्वाधिक प्रतिनिधि नाम फणीश्वरनाथ रेणु है। मैला आँचल बिहार के पूर्णिया ज़िले के मेरीगंज गाँव की कथा है, जिसमें मलेरिया और कालाज़ार से जूझता गाँव, जाति-गुटों की प्रतिस्पर्धा, भूमि-विवाद, स्वतंत्रता के बाद के राजनीतिक दलों का प्रवेश और डॉक्टर प्रशांत की सेवा-भावना का वृत्तांत एक साथ गुँथा हुआ है (रेणु, मैला आँचल, 25)। रेणु ने उपन्यास की भूमिका में स्वयं यह स्पष्ट किया कि इसमें फूल भी हैं और काँटे भी, धूल भी और कीचड़ भी, अर्थात् जीवन के सुंदर और कुरूप, दोनों रूप। यह कथन आंचलिक यथार्थ की उस दृष्टि को बताता है जिसमें गाँव का न तो रोमानी महिमामंडन है, न एकांगी निंदा। मैला आँचल की

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

विशिष्टता यह है कि इसका नायक कोई एक व्यक्ति नहीं, बल्कि पूरा अंचल है। लोकगीत, लोक-कथा, मुहावरे और स्थानीय बोली का संयोजन उपन्यास को गहरी सांस्कृतिक प्रामाणिकता देता है। साथ ही, उपन्यास यह भी दर्शाता है कि स्वतंत्रता के बाद गाँव में राजनीति, जाति और स्वार्थ की धाराएँ किस प्रकार नए रूप में सक्रिय होती हैं (रेणु, मैला आँचल, 210)। रेणु की परती परिकथा में परती भूमि के बहाने गाँव के पुनर्निर्माण और विकास की संभावना तथा उसकी बाधाओं का चित्र है (रेणु, परती परिकथा, 40)। गोपाल राय के अनुसार आंचलिक उपन्यासों ने हिंदी कथा साहित्य में स्थानीयता को सृजनात्मक शक्ति के रूप में स्थापित किया (गोपाल राय, 150)।

नागार्जुन का बलचनमा एक गरीब खेतिहर मज़दूर और चरवाहे के जीवन की कथा आत्मकथात्मक शैली में कहता है। यहाँ शोषित स्वयं अपनी कथा का वाचक है, जिससे ज़मींदारी व्यवस्था के अत्याचार और उसके विरुद्ध उभरती चेतना को सीधे अनुभव की आवाज़ मिलती है (नागार्जुन, बलचनमा, 33)। वरुण के बेटे में मिथिला अंचल के मछुआरों का जीवन, उनका श्रम और जलाशयों पर अधिकार के प्रश्न चित्रित हैं (नागार्जुन, वरुण के बेटे, 20)। नागार्जुन का यथार्थ स्पष्टतः श्रमिक-किसान के पक्ष का यथार्थ है।

भैरवप्रसाद गुप्त के गंगा मैया में गंगा के किनारे बसे गाँवों में बाढ़, गरीबी और सामाजिक भेदों के बीच किसान-परिवारों की जिजीविषा का चित्र है (भैरवप्रसाद गुप्त, 55)। शिवप्रसाद सिंह के अलग अलग वैतरणी में स्वतंत्रता के बाद के गाँव में पंचायत, परिवर्तित संबंधों और सामाजिक तनावों की कथा है, जिसमें गाँव का भीतर से विघटन भी दिखाई देता है (शिवप्रसाद सिंह, 90)। रामदरश मिश्र ने आंचलिक उपन्यासों की इस श्रृंखला को हिंदी उपन्यास में लोकजीवन की पुनर्प्रतिष्ठा के रूप में देखा है (रामदरश मिश्र, 75)। आंचलिक उपन्यासों के संबंध में आलोचना में यह प्रश्न बार-बार उठा है कि क्या आंचलिकता स्वयं में एक सामाजिक दृष्टि है या केवल स्थानीय रंग का चित्रण। एक पक्ष का मत है कि किसी अंचल की भाषा, लोकाचार और जीवन-व्यवहार का चित्रण भारतीय गाँव की विविधता को सामने लाता है और केंद्रवादी दृष्टि का प्रतिकार करता है। रेणु की रचना में यह प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है (रेणु, मैला आँचल, 25)। दूसरे पक्ष का तर्क है कि केवल स्थानीय रंग पर बल देने से भू-स्वामित्व, ऋण और शोषण जैसे संरचनात्मक प्रश्न गौण हो सकते हैं, और नागार्जुन जैसे प्रगतिशील लेखकों का यथार्थ इन प्रश्नों को अधिक सीधे उठाता है (नागार्जुन, बलचनमा, 33)। वास्तव में दोनों धाराएँ परस्पर विरोधी नहीं बल्कि पूरक हैं। रेणु का आंचलिक चित्रण गाँव की सांस्कृतिक सघनता और बहुस्तरीयता को पकड़ता है, जबकि नागार्जुन और भैरवप्रसाद गुप्त का यथार्थ आर्थिक और वर्गीय संघर्ष पर प्रकाश डालता है (भैरवप्रसाद गुप्त, 55)।

गोपाल राय और रामदरश मिश्र की आलोचना-दृष्टि इन प्रवृत्तियों को हिंदी उपन्यास के विकास की विभिन्न कड़ियों के रूप में देखती है (गोपाल राय, 150; रामदरश मिश्र, 75)। इस प्रकार आंचलिकता और प्रगतिशील यथार्थवाद की बहस हिंदी उपन्यास की समृद्धि का संकेत है, क्योंकि उससे ग्रामीण यथार्थ को देखने के अनेक कोण उपलब्ध हुए।

स्वातंत्र्योत्तर मोहभंग और व्यंग्यपरक यथार्थ

स्वतंत्रता के बाद गाँव के जीवन में विकास योजनाओं और लोकतांत्रिक संस्थाओं से जो अपेक्षाएँ जगी थीं, वे अनेक स्थानों पर अधूरी रहीं। इस मोहभंग की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति श्रीलाल शुक्ल के राग दरबारी में हुई। शिवपालगंज नामक कस्बाई गाँव में वैद्यजी की राजनीति, कॉलेज, सहकारी समिति और ग्राम पंचायत जैसी संस्थाएँ अपने मूल उद्देश्य से हटकर स्वार्थ और जोड़-तोड़ का अखाड़ा बन चुकी हैं। उपन्यास का पात्र लंगड़ एक नकल पाने के लिए वर्षों तक दफ़्तर के चक्कर लगाता है, जो सरकारी तंत्र की जड़ता का प्रतीक है (श्रीलाल शुक्ल, 112)। नामवर सिंह ने स्वातंत्र्योत्तर साहित्य की आलोचना में इस मोहभंग की प्रवृत्ति पर ध्यान दिलाया है (नामवर सिंह, 60)। राग दरबारी की विशेषता यह है कि इसका व्यंग्य अतिरंजना से अधिक पहचान पर टिका है। पाठक को इसमें अपने आसपास की संस्थाएँ पहचान में आती हैं। मधुरेश के अनुसार यह उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर भारत के लोकतंत्र और नौकरशाही के विकृत रूप का सशक्त साहित्यिक दस्तावेज़ है (मधुरेश, 180)। राही मासूम रज़ा का आधा गाँव एक दूसरे धरातल पर ग्रामीण यथार्थ को देखता है। गाज़ीपुर ज़िले के गंगौली गाँव के शिया मुसलमान ज़मींदार परिवारों की कथा के माध्यम से यह उपन्यास भारतीय गाँव की साझा संस्कृति, विभाजन के प्रभाव और पाकिस्तान की माँग से उपजे अलगाव को चित्रित करता है (राही मासूम रज़ा, 70)। यहाँ गाँव केवल हिंदू किसान-जीवन का नहीं, बल्कि बहुलतावादी समाज का स्थान है।

राग दरबारी के पात्र स्वतंत्रता के बाद के ग्रामीण समाज के प्रतिनिधि चरित्र हैं। वैद्यजी स्थानीय सत्ता के कुशल खिलाड़ी हैं, जो कॉलेज, सहकारी समिति और पंचायत, सभी में अपनी पकड़ बनाए रखते हैं। शहर से आया रंगनाथ इस व्यवस्था का दर्शक भी है और धीरे-धीरे उसमें उलझता भी जाता है। यह उपन्यास यह दिखाता है कि संस्थाएँ केवल कानूनों से नहीं, बल्कि उन्हें चलाने वाले लोगों की मंशा और सामाजिक संबंधों से संचालित होती हैं (श्रीलाल शुक्ल, 112)। इस दृष्टि से इसे समाजशास्त्रीय अर्थ में भी पढ़ा जा सकता है, क्योंकि श्रीनिवास के

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

अध्ययन में भी गाँव की सत्ता-संरचना में प्रभुत्वशाली समूहों की निर्णायक भूमिका का संकेत मिलता है (श्रीनिवास, 3)। आधा गाँव में रज़ा ने भारतीय गाँव की साझा संस्कृति के भीतर पनपते सांप्रदायिक तनाव को विभाजन की पृष्ठभूमि में चित्रित किया। यहाँ कथा किसी एक नायक पर नहीं, बल्कि पूरे गाँव के सामूहिक अनुभव पर टिकी है, जिसमें धर्म, परंपरा और राजनीति के बदलते समीकरण दिखाई देते हैं (राही मासूम रज़ा, 70)। यह रचना सिद्ध करती है कि ग्रामीण यथार्थ का अर्थ केवल आर्थिक शोषण का चित्रण नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक पहचान और सामूहिक स्मृति का चित्रण भी है।

दलित, स्त्री और हाशिए का ग्रामीण यथार्थ

पारंपरिक ग्रामीण चित्रण में कई बार भूमिहीन, दलित और स्त्री जैसे वर्गों की आवाज़ गौण रही। बाद के कथा-लेखन में यह कमी पूरी करने के प्रयास दिखाई देते हैं। जगदीश चंद्र का उपन्यास धरती धन न अपना पंजाब के दोआबा क्षेत्र में चमार समुदाय के जीवन, भूमिहीनता और जातिगत दमन की कथा कहता है। शीर्षक ही इस सच्चाई की ओर इशारा करता है कि जिनके श्रम से धरती हरी होती है, उनके पास उस पर अधिकार नहीं है (जगदीश चंद्र, 48)। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह चित्र श्रीनिवास की प्रभुत्वशाली जाति की अवधारणा को साहित्यिक रूप में पुष्ट करता है, जहाँ भूमि और सत्ता के साथ सामाजिक प्रतिष्ठा भी कुछ समुदायों के पास केंद्रित रहती है (श्रीनिवास, 3)। कृष्णा सोबती का ज़िंदगीनामा पंजाब के एक गाँव के सामूहिक जीवन का विशाल चित्र है, जिसमें ज़मींदार, किसान, कारीगर और आम लोग अपनी बोली, परंपराओं और संबंधों के साथ मौजूद हैं (कृष्णा सोबती, 130)। मैत्रेयी पुष्पा का इदन्नमम बुंदेलखंड के ग्रामीण समाज की स्त्रियों के श्रम और संघर्ष को केंद्र में रखकर लिखा गया है, और उनकी रचनाओं में पितृसत्ता और ग्रामीण सत्ता-संरचना का परस्पर संबंध प्रमुखता से उभरता है (मैत्रेयी पुष्पा, 88)। इस प्रकार स्त्री-दृष्टि ने ग्रामीण यथार्थ के उस पक्ष को सामने लाया जो पुरुष-केंद्रित चित्रण में अक्सर अदृश्य रह जाता था। इन रचनाओं से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण यथार्थ एकरूप नहीं है: उसमें जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर अनुभव अलग-अलग हैं।

समकालीन संकट: कृषि, ऋण और पलायन

1990 के दशक के बाद आर्थिक उदारीकरण, कृषि-लागत में वृद्धि, फसलों की अनिश्चित कीमतें और ऋणग्रस्तता ने ग्रामीण जीवन को नए संकट में डाल दिया। किसानों की आत्महत्याओं की घटनाओं ने इस संकट

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

की गंभीरता को सार्वजनिक बहस का विषय बनाया। संजीव का उपन्यास फॉस इस पृष्ठभूमि में विदर्भ क्षेत्र के किसानों की त्रासदी को केंद्र में रखता है, जिसमें कर्ज, बाज़ार और सरकारी तंत्र की उदासीनता के बीच किसान परिवारों की विवशता सामने आती है (संजीव, 60)। यहाँ गोदान के होरी की परंपरा का नया रूप दिखाई देता है: गाय का सपना देखने वाला किसान अब बाज़ार-आधारित कृषि में ऋण के जाल में फँसा हुआ है। समकालीन कथा साहित्य में पलायन भी एक महत्वपूर्ण विषय है। गोदान में गोबर का शहर की ओर जाना जो प्रवृत्ति के रूप में दिखा था (प्रेमचंद, गोदान, 150), वह आज बड़े पैमाने पर श्रमिक प्रवासन के रूप में सामने आता है, जिसमें गाँव बुजुर्गों और स्त्रियों के हवाले रह जाते हैं। दुबे और श्रीनिवास के क्लासिक गाँव-अध्ययनों की तुलना में आज का गाँव अधिक खुला, बाज़ार से जुड़ा और बाहरी दुनिया से प्रभावित है (दुबे, 9; श्रीनिवास, 3)। इसलिए समकालीन ग्रामीण यथार्थ के चित्रण के लिए रचनाकारों को नए शिल्प और नई संवेदना की आवश्यकता है।

संकट के इस चित्रण में स्त्री-श्रम की भूमिका भी उल्लेखनीय है। जब पुरुष कर्ज या रोज़गार के कारण गाँव छोड़ देते हैं, तो खेती, पशुपालन और परिवार का भार स्त्रियों पर आ जाता है, और इस बदलाव को मैत्रेयी पुष्पा जैसी रचनाकारों की दृष्टि अधिक संवेदनशीलता से पकड़ती है (मैत्रेयी पुष्पा, 88)। इसी प्रकार दलित और भूमिहीन परिवारों के लिए संकट अपेक्षाकृत अधिक गहरा रहता है, जैसा कि धरती धन न अपना की भूमिहीनता की कथा में दिखता है (जगदीश चंद्र, 48)। समकालीन कथा साहित्य के लिए चुनौती यह है कि वह इन अलग-अलग अनुभवों को एक साथ दर्ज कर सके।

भाषा, शिल्प और लोक: ग्रामीण यथार्थ की अभिव्यक्ति

ग्रामीण यथार्थ की अभिव्यक्ति में भाषा और शिल्प की भूमिका निर्णायक है। रेणु के यहाँ लोकगीत, लोककथा और ध्वन्यात्मक बिंब कथा के अंग बन जाते हैं और भाषा केवल माध्यम नहीं बल्कि अंचल की आत्मा बन जाती है (रेणु, मैला आँचल, 25)। राही मासूम रज़ा की भाषा में गंगौली की बोली-बानी, और विवादित समझी गई गालियाँ भी, पात्रों के सामाजिक परिवेश की प्रामाणिकता का प्रश्न उठाती हैं (राही मासूम रज़ा, 70)। नागार्जुन की प्रथम पुरुष शैली अनुभव की प्रत्यक्षता लाती है (नागार्जुन, बलचनमा, 33), और श्रीलाल शुक्ल की भाषा में व्यंग्य की तीक्ष्णता है (श्रीलाल शुक्ल, 112)।

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

लोकगीत, मुहावरे, कहावतें और लोककथाएँ ग्रामीण कथा-शिल्प का अभिन्न अंग हैं। ये तत्त्व केवल सजावट नहीं, बल्कि ग्रामीण समाज की सामूहिक स्मृति, विश्वास और जीवन-दृष्टि के वाहक हैं। रेणु ने गीत और लोकधुनों को कथा-प्रवाह में इस तरह पिरोया कि वे घटनाओं की व्याख्या का काम भी करते हैं (रेणु, परती परिकथा, 40)। शिवपूजन सहाय की देहाती दुनिया में लोक-व्यवहार और बोलचाल की जीवंतता इसी प्रवृत्ति की आरंभिक झलक देती है (शिवपूजन सहाय, 12)। इस प्रकार लोक-संस्कृति के प्रयोग से ग्रामीण यथार्थ भाषा, स्मृति और सौंदर्य, तीनों स्तरों पर अभिव्यक्त हुआ है।

इन प्रयोगों से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण यथार्थ को साहित्य में केवल विषय-वस्तु के स्तर पर नहीं, बल्कि भाषा, कथा-संरचना और दृष्टिकोण के स्तर पर भी साधा गया है। मधुरेश ने इस बात को उपन्यास की यात्रा में शिल्प और दृष्टि के संबंध के रूप में रेखांकित किया है (मधुरेश, 120)। यह भी ध्यान देने योग्य है कि लोक-संस्कृति के तत्त्वों के प्रयोग से रचनाएँ ग्रामीण समाज की सामूहिक स्मृति को भी बचाकर रखती हैं।

चुनौतियाँ

ग्रामीण यथार्थ के साहित्यिक चित्रण के सामने कई चुनौतियाँ हैं। पहली, आदर्शिकरण और रोमानीकरण का खतरा। गाँव को सादगी, प्राकृतिक सौंदर्य और नैतिकता के प्रतीक के रूप में चित्रित करने की प्रवृत्ति कभी-कभी शोषण और असमानता की कठोर सच्चाई को ढक देती है, और रेणु का गाँव के सुंदर और कुरूप, दोनों पक्षों को साथ रखने का आग्रह इसी खतरे के प्रति सावधानी है। दूसरी, लेखक की सामाजिक स्थिति का प्रश्न। जब लेखक स्वयं गाँव के बाहर या ऊँची सामाजिक स्थिति से देखता है, तो उसके चित्रण में सहानुभूति के बावजूद बाहरी दृष्टि बनी रह सकती है। इसी कारण दलित और स्त्री-लेखन की आत्म-अभिव्यक्ति का महत्त्व बढ़ जाता है।

तीसरी, आंचलिकता की सीमा। कुछ आलोचक मानते हैं कि अत्यधिक स्थानीय रंग कभी-कभी सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं के व्यापक विश्लेषण को पीछे धकेल देता है। चौथी, गाँव का तेज़ी से बदलता स्वरूप, जिसमें बाज़ार, मीडिया, प्रवासन और डिजिटल संचार गाँव की सीमाओं को धुँधला कर रहे हैं, ऐसे में पारंपरिक ग्रामीण बनाम शहरी द्वैत अपर्याप्त हो चला है। पाँचवीं, ग्रामीण विषयों पर लेखन की घटती उपस्थिति। गोपाल राय और मधुरेश की इतिहास-दृष्टियाँ दिखाती हैं कि ग्रामीण यथार्थ हिंदी उपन्यास की एक केंद्रीय धारा रही है (गोपाल राय, 150; मधुरेश, 120), पर नगर-केंद्रित और महानगरीय अनुभव के विस्तार के साथ इस धारा को नई ऊर्जा की

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

आवश्यकता है। इन चुनौतियों के बावजूद ग्रामीण यथार्थ का साहित्य सामाजिक विश्लेषण का महत्वपूर्ण स्रोत बना हुआ है।

निष्कर्ष

इस शोध-पत्र में आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन और सामाजिक यथार्थ का अध्ययन किया गया। विश्लेषण से स्पष्ट हुआ कि प्रेमचंद ने किसान-जीवन के शोषण, ऋण और जातिगत विषमता को केंद्र में रखकर ग्रामीण यथार्थ की नींव रखी; रेणु, नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त और शिवप्रसाद सिंह जैसे रचनाकारों ने आंचलिकता के माध्यम से स्थानीय जीवन की सघन प्रामाणिकता प्रस्तुत की; श्रीलाल शुक्ल और राही मासूम रज़ा ने स्वतंत्रता के बाद के मोहभंग, लोकतांत्रिक संस्थाओं की विकृति और साझा संस्कृति के प्रश्नों को उठाया; जगदीश चंद्र, कृष्णा सोबती और मैत्रेयी पुष्पा ने दलित, स्त्री और सामूहिक ग्रामीण अनुभव को प्रमुखता दी; तथा संजीव जैसे समकालीन लेखकों ने कृषि-संकट और ऋणग्रस्तता को कथा का विषय बनाया।

प्रथम शोध प्रश्न का उत्तर यह है कि ग्रामीण जीवन का चित्रण करुणा और सुधार की दृष्टि से आरंभ होकर आंचलिक प्रामाणिकता, व्यंग्यपूर्ण मोहभंग और हाशिए की आवाज़ों तक विकसित हुआ है। द्वितीय प्रश्न के संबंध में निष्कर्ष यह है कि ये रचनाएँ दुबे और श्रीनिवास जैसे समाजशास्त्रियों द्वारा विश्लेषित ग्रामीण संरचनाओं, अर्थात् जाति-पदानुक्रम, भू-स्वामित्व और सत्ता-संबंधों को संवेदनात्मक गहराई के साथ उद्घाटित करती हैं, यद्यपि वे आँकड़ों का विकल्प नहीं बल्कि उनकी पूरक हैं। भविष्य में दलित, आदिवासी और स्त्री-आत्मकथाओं, क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य और नए कृषि-संकट पर लिखे जा रहे लेखन के तुलनात्मक अध्ययन से इस विषय को और समृद्ध किया जा सकता है। ग्रामीण यथार्थ का साहित्य यह स्मरण कराता है कि समाज को समझने के लिए उसके सबसे निचले पायदान पर खड़े व्यक्ति के अनुभव को सुनना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गांधी, मोहनदास करमचंद. हिंद स्वराज. नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1909 (प्रथम प्रकाशन).
2. गुप्त, भैरवप्रसाद. गंगा मैया. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1952 (प्रथम प्रकाशन).
3. चंद्र, जगदीश. धरती धन न अपना. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1972 (प्रथम प्रकाशन).
4. नागार्जुन. बलचनमा. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1952 (प्रथम प्रकाशन).
5. नागार्जुन. वरुण के बेटे. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1957 (प्रथम प्रकाशन).

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

6. पुष्पा, मैत्रेयी. इदन्नमम. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994.
7. प्रेमचंद. गोदान. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1936 (प्रथम प्रकाशन).
8. प्रेमचंद. प्रेमाश्रम. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1922 (प्रथम प्रकाशन).
9. प्रेमचंद. मानसरोवर (भाग 1-8). सरस्वती प्रेस, बनारस / हंस प्रकाशन, इलाहाबाद (प्रथम प्रकाशन 1936 से).
10. प्रेमचंद. साहित्य का उद्देश्य. हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954.
11. मधुरेश. हिंदी उपन्यास का सफ़रनामा. शब्दार्थ प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004.
12. मिश्र, रामदरश. हिंदी उपन्यास: एक अंतर्गता. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1968.
13. रज़ा, राही मासूम. आधा गाँव. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966 (प्रथम प्रकाशन).
14. राय, गोपाल. हिंदी उपन्यास का इतिहास. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002.
15. रेणु, फणीश्वरनाथ. परती परिकथा. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1957 (प्रथम प्रकाशन).
16. रेणु, फणीश्वरनाथ. मैला आँचल. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1954 (प्रथम प्रकाशन).
17. शर्मा, रामविलास. प्रेमचंद और उनका युग. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1952 (प्रथम प्रकाशन).
18. शुक्ल, श्रीलाल. राग दरबारी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1968 (प्रथम प्रकाशन).
19. संजीव. फाँस. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015.
20. सहाय, शिवपूजन. देहाती दुनिया. 1926 (प्रथम प्रकाशन); पुनर्प्रकाशित संस्करण.
21. सिंह, नामवर. कहानी: नयी कहानी. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966.
22. सिंह, शिवप्रसाद. अलग अलग वैतरणी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1967 (प्रथम प्रकाशन).
23. सोबती, कृष्णा. ज़िंदगीनामा. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979 (प्रथम प्रकाशन).
24. Dube, S. C. *Indian Village*. Routledge and Kegan Paul, London, 1955.
25. Srinivas, M. N. *The Remembered Village*. Oxford University Press, Delhi, 1976.